3

जैन इतिहास के प्रसंग

भगवान मल्लिनाथ आदि

प्रकाशक
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

पुस्तक :

जैन इतिहास के प्रसंग

भाग–3

(भगवान मल्लिनाथ आदि)

प्रेरणास्रोत :

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.

द्वारा निर्देशित ***जैन धर्म का मौलिक इतिहास***

तथा श्री गजसिंह जी राठौड़ आदि विद्वज्जनों द्वारा

सम्पादित के आधार पर

सम्पादक :

डॉ. दिलीप धींग

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल

बापू बाजार, जयपुर–3 (राजस्थान)

फोन नं. 0141–2575997, 2571163

फैक्स : 0141–2570753 Email : sgpmandal@yahoo.in

द्वितीय संस्करण : 2013

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **5/-** (पाँच रुपये मात्र)

मुद्रक : **दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर**

:: अन्य प्राप्ति स्थल ::

❐ **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
घोड़ों का चौक, **जोधपुर–342001**
(राजस्थान) फोन: 0291 – 2624891

❐ **Shri Navratan ji Bhansali**
C/o. Mahesh Electricals,
14/5, B.V.K. Ayangar Road,
BANGALORE-560053
(Karnataka)
Ph. : 080-22265957
Mob. : 09844158943

❐ **Shri B. Budhmal ji Bohra**
C/o. Bohra Syndicate,
53, Erullapan Street,
Sowcarpet,**CHENNAI-79**
(Tamilnadu)
Ph. : 044-26425093
Mob. : 09444235065

❐ **श्रीमती विजया जी मल्हारा**
रतन सागर बिल्डिंग, कलेक्टर बंगला रोड,
चर्च के सामने, **जलगाँव–425001**
(महाराष्ट्र) फोन : 0257–2225903

❐ **श्री दिनेश जी जैन**
1296, कटरा धुलिया,
चाँदनी चौक, दिल्ली–110006
फोन: 011–23919370 मो. : 09953723403

प्रकाशकीय

भारतीय श्रमण-परम्परा में आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. को उनके बहुआयामी अवदानों तथा उपकारों के लिए जाना जाता है। उनके द्वारा निर्देशित 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' (चार भाग) न सिर्फ श्रमण संस्कृति, अपितु भारतीय संस्कृति और इतिहास के लिए अगणित तथ्यों और जानकारियों से भरा उपयोगी दस्तावेज है। सुदूर अतीत में हुए प्रमुख व्यक्तियों और घटनाओं की तथ्य पूर्ण प्रस्तुति अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इतिहास मनीषी आचार्य हस्ती के साधनामय तथा पाद-विहारी जीवन के दो दशकीय अथक श्रम और सतत शोध के फलस्वरूप करीब साढ़े तीन हजार पृष्ठों में इस इतिहास की प्रस्तुति सम्भव हुई। अपनी विलक्षण शोध-दृष्टि, विश्लेषण-क्षमता और प्रमाणों के आलोक में आचार्यश्री ने एक ओर इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियों का निराकरण किया, दूसरी ओर कई नये तथ्यों से हमें अवगत कराया। जहाँ, वे कोई निर्णय नहीं कर पाए, वहाँ उन्होंने यह निर्देश कर दिया कि 'इस सम्बन्ध में और भी शोध की आवश्यकता है।' उनके इस प्रकार के निर्देश में उनकी शोधप्रियता और शोध-की-प्रेरणा छिपी हुई है। उनके द्वारा प्रस्तुत जैन इतिहास समस्त संस्कृति-प्रेमी और इतिहास-प्रेमी जिज्ञासुओं को आकर्षित करता है।

जैन इतिहास बहुत ही रोचक और व्यापक विषय है। इसमें अनेक प्रेरक तथ्य, कथाएँ, घटनाएँ और प्रसंग भरे पड़े हैं। ये छोटे-बड़े प्रसंग जीवन, जगत्, समाज, आचार, विचार, परम्पराएँ, समय, इतिहास आदि के बारे में अनेक प्रकार के संकेत और निर्देश करते हैं। कथात्मक होने से ऐसे प्रसंग हमेशा के लिए मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं और जीवन की अनजानी और अन्धियारी राहों में पथ-प्रदीप बनकर मार्गदर्शक बनते हैं।

आज की व्यस्त जिन्दगी में सारे इतिहास को आद्योपान्त पढ़ना सबके लिए सहूलियत भरा नहीं है। ज्ञानवर्द्धन, संस्कार-जागरण और जीवन-निर्माण के लिए अल्प मूल्य की छोटी-छोटी किताबों की उपयोगिता सर्वविदित है। आचार्य हस्ती जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर हमारा विचार बना कि जैन इतिहास के रोचक और प्रेरक प्रसंगों की छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार की जाएँ, जिससे अधिकाधिक पाठकों तक प्रेरक ऐतिहासिक प्रसंग पहुँच सकें। ऐसा करने से सभी आयु और रुचि के पाठक वर्ग में इनकी पठनीयता बढ़ेगी। अल्प मूल्य की इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं को किसी अवसर विशेष पर बड़ी संख्या में वितरित करके हमारे इस अभिनव प्रयास का विशेष मूल्यांकन भी किया जा सकता है।

पूज्य आचार्यप्रवर के मार्गदर्शन में विद्वद्वरेण्य श्री गजसिंह जी राठौड़ एवं सम्पादक-मण्डल के सहयोग से **'जैन धर्म का मौलिक इतिहास'** के जो चार भाग तैयार हुए, उनकी

महत्ता विश्वविद्यालयों के सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में आज भी विद्यमान है। तथापि इन चारों भागों की विषय-वस्तु सर्वजनग्राह्य हो, इस दृष्टि से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के अध्यक्ष श्री पी. शिखरमल जी सुराणा, चेन्नई के सत्प्रयासों से मौलिक इतिहास के संक्षिप्तीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। डॉ. दिलीप जी धींग (उदयपुर वाले), बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने चेन्नई आने के पश्चात् अल्पावधि में ही मौलिक इतिहास के विभिन्न इतिहास प्रसंगों को लघुखण्डों में संयोजित एवं सम्पादित कर दिया।

प्रस्तुत खण्ड में 19वें तीर्थंकर भगवान मल्लीनाथ, चक्रवर्ती सुभूम, विष्णुकुमार मुनि आदि से सम्बन्धित प्रसंग प्रस्तुत किये गये है।

लाखों श्रद्धालुओं के हृदयपटल में सतत बसने वाले आचार्य प्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. एवं उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. का दीक्षा अर्द्धशती वर्ष मनाया जा रहा है। इस अवसर पर 'जैन इतिहास के प्रसंग' के विभिन्न भागों को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रमोद अनुभव हो रहा है।

ह्न:: निवेदक ::ह्न

कैलाशमल दुगड	**सम्पतराज चौधरी**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

अनुक्रमणिका

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	भगवान मल्लिनाथ	7
2.	जन्म व नामकरण	11
3.	अलौकिक सौंदर्य की ख्याति	13
4.	छहों राजाओं को प्रतिबोध	28
5.	मल्लीकुमारी का अभिनिष्क्रमण	33
6.	केवल ज्ञान	35
7.	सुभूम चक्रवर्ती–प्रतिशोध का कुफल	38
8.	विष्णुकुमार–संघ रक्षार्थ लब्धि–प्रयोग	46
9.	इतिहास पुरुष आचार्य हस्ती	54

भगवान मल्लिनाथ

जैन धर्म के उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान श्री मल्लिनाथ अपने पूर्वभव में महाबल नामक महाराजा थे। महाराज महाबल की कथा यहाँ दी जा रही है।

सुदीर्घ अतीतकाल में जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वीतशोका नामक एक नगरी थी। वीतशोका नगरी में बल नामक महाराजा थे। बल की महारानी धारिणी ने एक रात स्वप्न देखा कि एक केसरी सिंह उनके मुख में प्रवेश कर रहा है। स्वप्नपाठकों ने बताया कि महारानी एक महाबली और प्रतापी पुत्र को जन्म देगी। यथासमय पुत्र-जन्म होने पर राजा बल ने अपने इस पुत्र का नाम महाबल रखा। योग्य वय होने पर महाबल का विवाह अत्यन्त रूपवती कमलश्री आदि पाँच सौ राजकुमारियों से कर दिया गया। इस प्रकार राजकुमार महाबल सांसारिक भोगों का उपभोग करते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

कालान्तर में वीतशोका नगरी के इन्द्रकुम्भ उद्यान में स्थविर मुनियों का आगमन हुआ। महाराज बल अपने परिजनों एवं पुरजनों के साथ मुनियों के दर्शन एवं प्रवचन से

लाभान्वित होने पहुँचे। महामुनि का उपदेश सुनकर महाराज बल के मन में श्रमणधर्म में दीक्षित होने की इच्छा जागृत हुई। राजा बल ने अपने युवराज पुत्र महाबल का राज्याभिषेक किया और स्थविरों की सेवा में उपस्थित होकर भागवती दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा ग्रहण कर महाराज बल ने अनेक वर्षों तक पूर्णनिष्ठा और प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ श्रमणपर्याय का पालन किया। अन्त में चारू पर्वत पर संलेखना-संथारा किया और एक मास के अनशन पूर्वक समस्त कर्मों का अन्त कर निर्वाण प्राप्त किया।

उधर सिंहासन पर आरूढ़ होने के बाद महाराज महाबल ने न्याय-नीतिपूर्वक प्रजा का पालन किया। उनकी महारानी कमलश्री ने एक ओजस्वी पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम बलभद्र रखा गया। महाराज और महारानी ने बलभद्र का राजसी ठाठ-बाठ से लालन-पालन किया, उचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की और सही समय पर युवराज घोषित किया।

महाराज महाबल के अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण और अभिचन्द नामक छः समवयस्क सखा थे। इन

सातों मित्रों में इतनी प्रगाढ़ मित्रता थी कि एक दिन इन लोगों ने संकल्प लिया कि वे लोग जीवनभर साथ रहेंगे और जीवन के सारे काम यहाँ तक कि पारलौकिक हित-साधना के सारे कार्य भी साथ-साथ करेंगे। कालान्तर में इन्द्रकुंभ उद्यान में कुछ स्थविर श्रमणों का आगमन हुआ। सातों मित्र भी श्रमणदर्शन और उपदेश-श्रवण के लिए गए। धर्मोपदेश सुनने के बाद महाबल ने कहा कि मैं अपने पुत्र को राज्यभार सौंप कर श्रमणधर्म में दीक्षित होना चाहता हूँ। महाबल की यह बात सुनकर छहों मित्रों ने कहा कि हमें भी संसार से कौन-सा विशेष आकर्षण है, हम लोग भी तुम्हारे साथ ही प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे। सातों मित्रों ने अपने-अपने पुत्रों को कार्यभार सौंपा और अपने-अपने हाथों से पंचमुष्टि लुंचन कर स्थविर महामुनि के पास श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की।

श्रमणधर्म में दीक्षित होने के पश्चात् उन सातों मित्रों ने साथ-साथ एकादशांगी का अध्ययन किया और अपनी आत्मा को तप एवं संयम द्वारा भावित करते हुए विचरण करने लगे। कालान्तर में आपस में विचार कर उन सातों मुनियों ने निश्चय किया कि वे अपने सभी तप और साधनाएँ

एकसाथ, समानरूप से करेंगे। अपने निर्णय के अनुसार सातों श्रमण-मित्र साथ-साथ समान तप का आचरण करने लगे। कुछ काल के अनन्तर मुनि महाबल के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि श्रमणधर्म स्वीकार करने से पूर्व मैं अपने सभी मित्रों से ऋद्धि, प्रसिद्धि, समृद्धि तथा ऐश्वर्य आदि में बड़ा और आगे रहा हूँ। ये लोग कभी मेरे समकक्ष नहीं थे अत: मुझे तपश्चरण में भी इनसे आगे ही रहना चाहिए। यह विचार आते ही महाबल के मन में छल-छद्म की भावना पैदा हुई और अपने अन्य मित्रों से छिपाकर वह उनके साथ ही उनसे आगे की ऊँची साधना करने लगा, जैसे छहों मुनि षष्ठभक्त तप करते तो महाबल अष्टमभक्त तप करता। परिणामस्वरूप बड़े रहने की आकांक्षा एवं अहं की भावना से महाबल का सम्यक्त्व दूषित हुआ।

इस प्रकार अपने छहों मित्रों के साथ संयुक्तरूप से ली गई समान तपस्या करने की अपनी प्रतिज्ञा के बावजूद भी अपने मित्रों को अपने अन्तर्मन का भेद न देते हुए अधिक तपस्या करते रहने के कारण मुनि महाबल ने स्त्री नामकर्म का बन्ध कर लिया। इसके पश्चात् सब प्रकार के शल्यों से

रहित हो बीसों बोलों की पुन: पुन: उत्कट आराधना करते हुए तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। मुनि महाबल आदि सातों ही श्रमण विभिन्न प्रकार की घोर और उग्र तपश्चर्याओं में लीन रहे। अन्त में चारू पर्वत पर उन सातों मुनियों ने दो मास की संलेखना सहित 84 लाख पूर्व की अपनी-अपनी आयु समाप्त की और जयन्त नामक अनुत्तरविमान में अहमिन्द्र देव हुए। महाबल पूर्ण 32 सागर की आयु वाले एवं अन्य 6 श्रमण कुछ कम 32 सागर की आयु वाले देव हुए। इस प्रकार मुनि महाबल के भव वाला भगवान मल्लिनाथ का जीवन किसी भी साधक के लिए अनुपम प्रेरणा का स्रोत है और उसे साधना में सदैव सावधान और जागरुक रहने की प्रेरणा देता है।

जन्म और नामकरण

जयन्त नामक अनुत्तरविमान के देवभव की आयु पूर्ण कर महाबल मुनि का जीव फाल्गुन शुक्ला चौथ को जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की मिथिला नगरी के महाराज कुम्भ की महारानी प्रभावती देवी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। उसी रात महारानी ने चौदह महाशुभस्वप्न देखे। दूसरे दिन स्वप्न-पाठकों ने महाराज को बताया- ''महाराज! महारानी के

द्वारा देखे गये स्वप्न उत्तम स्वप्न हैं। इन स्वप्नों को देखने वाली सौभाग्यवती स्त्री, तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती की माता होती है। महारानी द्वारा देखे गये स्वप्न यही संकेत देते हैं कि आप लोग शीघ्र ही ऐसी संतान के माता-पिता बनेंगे जो भविष्य में या तो चक्रवर्ती सम्राट या धर्मसंघ का संस्थापक तीर्थंकर होगा।''

स्वप्न-फल सुनकर महाराज और महारानी दोनों की प्रसन्नता की सीमा न रही। गर्भकाल के सवा नौ मास पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को महारानी ने अनुपम शोभा और कान्तियुक्त पुत्री को जन्म दिया। देव-देवेन्द्रों एवं राजा-प्रजा ने विधिपूर्वक जन्मोत्सव मनाया। गर्भकाल में माता को पाँच वर्ण के फूलों की शय्या का दोहद उत्पन्न होने के कारण महाराज ने पुत्री का नाम मल्ली घोषित किया।

मल्ली राजकुमारी अनुक्रमशः दिन-प्रतिदिन वृद्धि करने लगी। जब वे 100 वर्ष से कुछ ही न्यून अवस्था की हुईं, उन्होंने अपने अवधिज्ञान से अपने पूर्वजन्म के छः राजकुमार मित्रों की इस जन्म की स्थिति का पता लगाया और सब कुछ जानती हुई अपनी सखियों के साथ सुखपूर्वक

जीवन बिताने लगी। इसी बीच उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा कि अशोक वाटिका में एक विशाल मोहन-घर का निर्माण किया जाये जिसके मध्य भाग में छः गर्भगृहों के बीच एक जालीगृह की रचना कर उस जालीगृह के बीचोंबीच एक चबूतरा बनवाया जाये। राजकुमारी मल्ली के आदेशानुसार निर्माण कार्य सम्पन्न कर उसकी सूचना उनको दी गई। राजकुमारी ने अपने ही समान आकार की एक स्वर्णप्रतिमा तैयार करवाई और चबूतरे पर स्थापित करवा दी। मूर्ति ऐसी बनी थी कि देखने वाले को साक्षात् राजकुमारी मल्ली का भ्रम हो जाय। उस प्रतिमा के सिर पर एक छिद्र बनवाकर उसे पद्म-पत्र से ढक दिया गया। उसके बाद राजकुमारी प्रतिदिन जो आहार करती उसका एक-एक ग्रास छिद्र के रास्ते प्रतिमा में डालकर छिद्र बंद कर दिया जाता। यह क्रम प्रतिदिन निरन्तर चलता रहा।

अलौकिक सौंदर्य की ख्याति

उन्मुक्त बाल-स्वभावा भगवती मल्ली के अलौकिक रूप-लावण्य तथा उत्कृष्ट गुणों की ख्याति दिग्दिगन्त में फैलने लगी। उन्हीं दिनों भगवती मल्ली के पूर्वजन्म के बालसखा उन

छहों राजाओं को भगवती मल्ली के प्रति अलग-अलग निमित्तों से प्रगाढ़ प्रीति उत्पन्न हुई, उन निमित्तों का सार रूप विवरण इस प्रकार है:-

1. महाराज महाबल के पूर्वजन्म के मित्र अचल का जीव जयन्त विमान की देव-आयु पूर्ण होने पर कौशल देश की राजधानी अयोध्या में प्रतिबुद्धि नामक कौशल नरेश हुआ। एक बार साकेतपुर में राजा प्रतिबुद्धि ने रानी पद्मावती के लिए नागधर के यात्रा महोत्सव हेतु लाए गए एक सुन्दर-मनोहारी गुलदस्ते को देखकर अपने सुबुद्धि नामक प्रधान से पूछा, ''क्या तुमने ऐसा मनोहर गुलदस्ता कभी देखा है?'' मंत्री ने उत्तर दिया-''महाराज, मैं एक बार आपका संदेश लेकर मिथिला गया था। उस समय राजकुमारी मल्ली के वार्षिक जन्मोत्सव के अवसर पर जो दिव्य गुलदस्ता मैंने देखा उसके समक्ष यह गुलदस्ता लक्षांश भी नहीं है। साथ ही स्वयं राजकुमारी मल्ली भी अद्वितीय सौंदर्य वाली है।'' मल्ली के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर राजा प्रतिबुद्धि ने अपना एक कुशल दूत मिथिला के राजा के पास भेजा और कहा कि वह राजा कुंभ से निवेदन करें कि मैं उनकी राजकुमारी मल्ली से विवाह करना चाहता हूँ और इसके लिए मैं अपना सारा राज्य न्यौछावर करने के लिए समुद्यत हूँ।

2. महाराज महाबल के पूर्वजन्म के दूसरे मित्र धरण का जीव जयन्त विमान की देव-आयु पूर्ण होने पर अंग जनपद की राजधानी चम्पानगरी में चन्द्रछाग नामक अंगराज हुआ। उस समय चम्पानगरी में सम्मिलित रूप से व्यापार करने वाले बहुत से पोतवणिक हुआ करते थे। वे व्यापारी जहाजों से दूर-दूर के देशों में व्यापार के लिए समुद्री यात्राएँ करते थे। उन व्यापारियों में अरहन्नक नामक व्यापारी धन-धान्य से तो समृद्ध था ही, साथ ही धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाला श्रमणोपासक भी था। एक बार अरहन्नक अपने कई व्यापारी साथियों के साथ दो विशाल जलपोतों में तरह-तरह के बहुमूल्य क्रय-विक्रय के सामान लेकर व्यापार के लिए समुद्री यात्रा पर चला। वे लोग कई दिनों की यात्रा के बाद समुद्र की उत्ताल तरंगों से खेलते-जूझते अपने जलपोतों में समुद्र में बहुत दूर निकल गए। चारों ओर समुद्र की अथाह जलराशि और सागर की लोल-लहरों के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देता था। रात का समय था, एकाएक आकाश में तरह-तरह के उत्पात होने लगे। सहसा व्यापारियों ने देखा कि एक काजल के समान काला और अति विशालकाय दैत्य भयंकर अट्टहास और काल भैरव की तरह नृत्य करता हुआ उनके जहाज की

तरफ बढ़ता चला आ रहा है। उसके गले में नरमुण्डों की माला लटक रही थी और हाथ में दुधारी रक्तरंजित खड्ग थी। इस भीषण कालतुल्य पिशाच को देखकर सभी वणिक भयभीत हो एक-दूसरे से चिपट गए। केवल अरहन्नक स्थिर रहे। उन्होंने पोत पर ही एक स्थान को साफ-सुथरा बना कर धैर्यपूर्वक ध्यानावस्थित हो सिद्धप्रभु की स्तुति की और आगार सहित संथारे का प्रत्याख्यान किया। उधर पिशाच अरहन्नक के पास पहुँचा और तरह-तरह की बातों से उसे डराने लगा। अरहन्नक धीर, गंभीर और निर्भय बना अपनी साधना में लीन रहा। अरहन्नक को इस प्रकार शांत और ध्यानमग्न देखकर पिशाच अपनी असफलता पर निराश और क्रोधित हुआ। उसने दशों दिशाओं को कंपाने वाली भयानक गर्जना की और अरहन्नक के जहाज को अपनी दो अंगुलियों में उठा लिया और ऊँची छलांग लगाते हुए बोला-''अगर तुम अब भी अपनी आस्था और श्रमणोपासना में लगे रहे तो तुम्हारे जलयान को सागर के अथाह जल के तल में डुबो दूँगा।'' पर पिशाच ने देखा कि अरहन्नक पूर्ववत् अपनी धर्म-आस्था पर, अपने सम्यक्त्व पर सुस्थिर है तो उसने जलपोत को धीरे-धीरे समुद्र की सतह पर रख दिया और अपने

दिव्यदेवरूप में अरहन्नक के समक्ष उपस्थित हो बोला, अर्हन्नक! निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति तुम्हारी अविचल आस्था से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। देवराज इन्द्र ने जब विशाल देव समूह के समक्ष तुम्हारी श्रद्धा-निष्ठा की प्रशंसा की थी तो मुझे उनके वचनों पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए मैंने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए पिशाच का रूप धारण कर तुम्हारे मार्ग में ये सारी बाधाएँ उपस्थित की, मुझे इसका खेद है। वस्तुत: तुम्हारी श्रमणनिष्ठा और श्रावकधर्म की जितनी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है। ऐसा कहकर उस देव ने बार-बार क्षमा मांगी और अरहन्नक को दिव्य कुण्डलों की दो जोड़ियाँ भेंट कर अपने स्थान को लौट गया। देव के लौट जाने पर अरहन्नक ने अपने सागारी संथारे का पारणा किया और सभी व्यापारी सुखपूर्वक समुद्र की यात्रा करने लगे।

वायु से प्रेरित उनके जलपोत एक विशाल बंदरगाह पर पहुँचे। व्यापारियों ने अपने जलपोत बंदरगाह पर ठहराये और उनमें से काफी मात्रा में सामग्री साथ लेकर क्रय-विक्रय करते हुए मिथिला नगरी पहुँचे। अरहन्नक श्रमणोपासक मिथिला के राजा से मिलने गया और साथ में भेंट देने योग्य अनेक

सामग्रियों के साथ देव द्वारा प्रदत्त कुण्डलों की एक जोड़ी भी लेता गया। महाराज ने अरहन्नक के सामने ही मल्लीकुमारी को बुलाकर कुण्डल उनके कानों में धारण करवा दिए। तदनन्तर उन्होंने अरहन्नक और उसके साथी वणिकों को सम्मानपूर्वक विदा किया। मिथिला में अपना काम समाप्त कर वे लोग आगे बढ़े, फिर जलपोतों में यात्रा करते हुए चम्पानगरी वापस आ गए। अपनी यात्रा की कुशलपूर्वक समाप्ति की सूचना और यात्रा का आवश्यक विवरण देने के लिए अरहन्नक राजा चन्द्रछाग के यहाँ गया। साथ में राजा को भेंट देने योग्य सामग्रियाँ और देव द्वारा दिए गए कुण्डलों की दूसरी जोड़ी भी लेता गया। चम्पानरेश चन्द्रछाग ने बड़े प्रेम से अरहन्नक का स्वागत किया और प्रसन्नतापूर्वक भेंट स्वीकार करते हुए पूछा–''आप अपनी यात्रा में कई स्थानों पर गए होंगे, क्या आपने कहीं कोई अत्यन्त अद्‌भुत दृश्य या वस्तु देखी।'' अरहन्नक ने कहा–'मैंने महाराज कुंभ को भी इसी प्रकार के दिव्य कुण्डल भेंट किए जिन्हें उन्होंने हमारे सम्मुख ही अपनी राजकुमारी मल्ली को बुलाकर पहना दिए। राजकुमारी मल्ली की तुलना कर सकने वाली मानवकन्या तो क्या कोई देवकन्या भी नहीं हो सकती। महाराज चन्द्रछाग ने

अरहन्नक और अन्य वणिकों को आदर-सत्कार के बाद विदा किया और अपने सबसे कुशल दूत को बुलाकर आदेश दिया – तुम मिथिला नगरी के नरेश कुंभ के पास जाओ और उनसे आग्रह करो कि वे अपनी राजकुमारी का विवाह मेरे साथ कर दें और उनके इस उपकार के लिए मैं अपना सारा राज्य भी उन्हें सौंप सकता हूँ। महाराज चन्द्रछाग का आदेश धारण कर दूत तुरन्त मिथिला के लिए चल पड़ा।

3. महाराज महाबल के पूर्वजन्म के तीसरे मित्र पूरण का जीव जयन्त विमान की देव-आयु पूर्ण होने पर कुणाला जनपद की राजधानी कुणाला नगर में रुप्पी नामक कुणालाधिपति हुआ। श्रावस्ती नगरी में महाराज रूप्पी का शासन था। उनकी महारानी धारिणी ने एक अति रूपवती कन्या को जन्म दिया जिसका नाम सुबाहु रखा गया। एक बार महाराज रूप्पी ने अपनी कन्या के लिए मज्जनमहोत्सव का आयोजन किया। उस महोत्सव के लिए विशेष प्रकार की नगरी और मण्डप की रचना की गई। मण्डप में सोने और चाँदी के सुन्दर कलशों से राजकुमारी को नहलाया गया और जब वह वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो पिता के पास आशीर्वाद के लिए आई तब राजा रूप्पी अपनी राजकुमारी के अलौकिक

सौंदर्य को देखकर विस्मित रह गए। उन्होंने वर्षधर पुरुषों को बुलाकर पूछा – क्या तुम लोगों में से किसी ने सुबाहु जैसी सुन्दर कन्या देखी है? एक वर्षधर पुरुष ने उत्तर दिया– ''महाराज एक बार हम लोग मिथिला नरेश की कन्या मल्ली के लिए आयोजित ऐसे ही समारोह में उपस्थित थे। उसकी तुलना में आपकी कन्या सुबाहु का सौंदर्य लाखवें भाग भी नहीं है।'' यह सुनकर कुणालाधिपति का गर्व ठण्डा हो गया और वह मल्लिकुमारी को पाने के लिए लालायित हो उठा। उसने अपना दूत मिथिला नरेश के पास भेजा और कहलाया कि वे अपनी कन्या का विवाह श्रावस्ती नरेश रूप्पी के साथ कर दें।

4. राजकुमारी मल्ली के अलौकिक सौंदर्य की ख्याति काशीनरेश के पास भी पहुँची। काशीनरेश का नाम महाराज शंख था और वे अपने पूर्वजन्म में महाराज महाबल के साथी अभिचंद थे। किसी समय अरहन्नक द्वारा भेंट दिये गए कुण्डल में से एक कुण्डल का जोड़ टूट जाने पर मिथिला नरेश ने अपने सुनारों को उसे जोड़ने के लिए दिया पर कोई भी सुनार यह काम नहीं कर सका। जिससे क्रुद्ध होकर महाराज कुंभ ने सभी स्वर्णकारों को अपने राज्य से निर्वासित कर दिया।

निर्वासित होकर वे सभी स्वर्णकार काशीनरेश के यहाँ पहुँचे और वहाँ रहकर काम करने की अनुमति माँगी। काशीनरेश ने जब स्वर्णकारों से निष्कासित करने का कारण पूछा तो उन्होंने कुण्डल वाली घटना बताई और कुण्डल के साथ राजकुमारी मल्ली की सुंदरता की भी चर्चा करते हुए कहा, ''महाराज, देवी मल्ली की सुंदरता में जो अलौकिक कांति है वह मानवकन्या ही नहीं, देवकन्या में भी मिलनी दुर्लभ है।'' सुनारों के मुख से मल्ली के सौंदर्य का वर्णन सुनकर राजा उस पर मुग्ध हो गए और उसे अपनी पत्नी बनाने के लिए व्यग्र हो उठे। उन्होंने तुरन्त अपने दूत को विवाह-प्रस्ताव लेकर मिथिला रवाना किया, साथ ही यह भी कहलाया कि इसके बदले काशीनरेश अपना विशाल राज्य भी उन्हें देने के लिए समुद्यत हैं।

5. भगवती मल्ली के सौंदर्य की ख्याति फैलते-फैलते कुरु तक पहुँच गई। महाराज महाबल के पूर्वजन्म के पाँचवें मित्र वसु का जीव जयन्त विमान की देव-आयु पूर्ण होने पर कुरु जनपद की राजधानी हस्तीनापुर में अदीनशत्रु नामक कुरुराज हुआ। राजकुमारी मल्ली के छोटे भाई का नाम मल्लदिन्न कुमार था। उसे चित्रकला से प्रेम था। एक बार उसने अपने प्रमोदवन

में चित्रकला की एक प्रदर्शनी आयोजित की। राजकुमार मल्लदिन्न स्वयं भी प्रदर्शनी देखने गए। वहाँ वे अपनी बड़ी बहन मल्ली को देखकर अचंभित और लज्जित से हो गए। संकोच से वे अपनी बहन से पीछे की ओर हटने का प्रयत्न करने लगे तो धाई माँ ने बताया कि राजकुमार जिसे देख रहे हैं वह उनकी बहन सदेह मल्ली नहीं बल्कि उनका सजीव-सा चित्र है। यह सुनकर राजकुमार को क्रोध आया और उसने उस चित्रकार के लिए प्राणदण्ड की आज्ञा दी। जब उसे ज्ञात हुआ कि चित्रकार ने देवी मल्ली को नहीं बल्कि किसी समय उनके पैर के अंगूठे को देख कर उसके आधार पर ही अपनी कल्पना के सहारे राजकुमारी का पूरा चित्र बनाया था, तो चित्रकार की अभूतपूर्व चित्रकला से प्रभावित गणमान्य दर्शकों एवं अन्य महान् चित्रकारों के अनुरोध और आग्रह पर राजकुमार ने चित्रकार के अंगूठे को छेदकर वहाँ से निर्वासित करने का आदेश दे दिया। चित्रकार मिथिला से निर्वासित होकर हस्तिनापुर पहुँचा। हस्तिनापुर में उसने देवी मल्ली का चित्र महाराज अदीनशत्रु को भेंट किया। चित्र को देखकर व मल्ली के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर महाराज मुग्ध हो गए। उन्होंने अपने एक कुशल दूत को बुलाकर मिथिला जाने का आदेश

दिया और कहा कि वे विदेह नरेश कुंभ की कन्या को अपनी पट्टमहिषी बनाने को व्यग्र हैं और अपना सम्पूर्ण राज्य भी देने को तैयार हैं।

6. महाराज महाबल के पूर्वजन्म के छठे मित्र वैश्रमण का जीव जयन्त विमान की देव-आयु पूर्ण होने पर पांचाल जनपद की राजधानी काम्पिल्यपुर नगरी में जितशत्रु नामक पांचालाधिपति हुआ। नगर में महाराज जितशत्रु का भव्य राजप्रासाद था जिसमें अति विशाल और सुरम्य अन्त:पुर था। अन्त:पुर में महारानी धारिणी प्रमुख जितशत्रु की एक हजार रानियाँ थीं और वे सभी अनिंद्य सुंदरियाँ थीं। महाराज कुंभ के शासनकाल में ही मिथिला में चोखा नाम की एक परिव्राजिका थी। चोखा परिव्राजिका बड़ी ही शास्त्रज्ञ एवं पारंगत विदुषी थी। वे मिथिला में भिन्न-भिन्न स्थानों पर शौचमूलक धर्म, दानधर्म एवं तीर्थाभिषेक आदि का व्याख्यापूर्वक उपदेश और आचरण से उनका प्रदर्शन भी करती। एक दिन वे अनेक परिव्राजिकाओं के साथ मिथिला के राजप्रासाद में गईं। वहाँ उन्होंने भगवती मल्ली के अन्त:पुर में शौचधर्म, दान धर्म की महत्ता बताते हुए उनका निरूपण किया। उनका निरूपण सुनने के बाद कुमारी मल्ली ने पूछा कि

धर्म का मूल किसे माना गया है? चोखा ने कहा कि धर्म को शौचमूलक माना गया है अर्थात् धर्म के लिए शुचिता और पवित्रता बहुत आवश्यक है, इसलिए जब कोई वस्तु अशुद्ध-अपवित्र हो जाती है तो हम उसे मिट्टी-पानी से धोकर पवित्र कर लेते है, उसी प्रकार जल से स्नान कर शरीर के साथ आत्मा को भी पवित्र बना लिया जाता है। इस पर देवी मल्ली ने कहा - यह तो वैसे ही है जैसे किसी रक्तरंजित वस्त्र को रक्त से ही धोकर साफ करने की कोशिश की जाए। इससे तो वह और गंदा और रक्तवर्ण तथा रूधिरमय होगा। असत्य, हिंसा, मैथुन, परिग्रह, मिथ्याप्रदर्शन आदि कर्मो से आत्मा कर्म-मल में लिप्त होती है, आत्मा पर लगा वह कर्म का मैल जल-स्नान या यज्ञादि कार्यों से कभी दूर नहीं हो सकता क्योंकि ये सारे कार्य हिंसा-कारक और पापपूर्ण हैं। जिस प्रकार रक्तरंजित वस्त्र को स्वच्छ, निर्मल करने के लिए उसे क्षार आदि में डुबो कर अग्नि से तपाया जाता है और फिर उसे शुद्ध जल से धोया जाता है उसी प्रकार पाप-कर्मो से प्रलिप्त आत्मा को भी सम्यक्त्व रूपी क्षार में लिप्त कर तपश्चर्या की अग्नि में तपाकर संयम के विशुद्ध जल से धोकर ही कर्म के मैल से मुक्त किया जा सकता है।

मल्लीदेवी का यह स्पष्ट विवेचन सुनकर चोखा परिव्राजिका निरुत्तर हो गई और चुपचाप देवी मल्ली की ओर ताकती रह गईं। कुछ समय पश्चात् चोखा ने अन्य सभी परिव्राजिकाओं के साथ मिथिला से पांचाल की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर चोखा परिव्राजिका अपनी शिष्या परिव्राजिकाओं के साथ पांचाल राज्य के काम्पिल्य नगर में पहुँची और लोगों को अपने शौचमूलक धर्म का उपदेश देने लगी। एक दिन वह अपनी शिष्याओं के साथ जितशत्रु के अन्त:पुर में पहुँची। राजा जितशत्रु ने चोखा परिव्राजिका का स्वागत किया और अपने रनिवास के विशाल परिवार के साथ उनका धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश के समय भी जितशत्रु का ध्यान अपनी अनिंद्य सुंदरी रानियों, उनके अनमोल वस्त्रालंकारों की ओर ही था और मन ही मन वह अपने अतुल ऐश्वर्य पर गर्व का अनुभव कर रहा था। धर्मोपदेश समाप्त होने पर राजा ने चोखा से पूछा – ''आप अपने धर्मोपदेश के लिए बडे-बड़े ऐश्वर्यशाली अन्त:पुरों में जाती होंगी। क्या आपने ऐसा विशाल और वर्णनातीत अनिंद्य सुन्दरियों से भरा हुआ अन्त:पुर अन्यत्र कहीं देखा है?'' महाराज जितशत्रु के प्रश्न को सुनकर चोखा परिव्राजिका

कुछ देर तक हँसती रही फिर बोली – विदेहराज मिथिलेश की कन्या मल्लीकुमारी को हमने देखा है। वस्तुत: वह संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। उसके सामने समस्त देवकन्याओं और नागकन्याओं का सौंदर्य फीका है। उसके रूप के समक्ष आपका यह अन्त:पुर तुच्छ और नगण्य है। इतना कह कर चोखा अपने गंतव्य को चली गई। मल्ली के सौंदर्य का वर्णन सुनकर महाराज जितशत्रु ने अपने दूत को मिथिला प्रस्थान करने का आदेश देते हुए कहा कि तुम मिथिला नरेश से निवेदन करो कि मैं अपना सारा पांचाल प्रदेश देकर भी उनकी कन्या से विवाह करने को कृत–संकल्प हूँ।

प्रतिबुद्धि आदि छहों राजाओं द्वारा महाराज कुम्भ के पास भेजे गए छहों दूत संयोगवश एक ही साथ मिथिला पहुँचे और एक–दूसरे से मिलने के पश्चात् एकसाथ ही महाराज कुंभ के दरबार में गए। आदर–अभिवादन के बाद छहों दूतों ने अपने–अपने महाराज के अभिप्राय महाराज कुंभ के पास रखे। दूतों के मुख से छहों राजाओं के कुमारी मल्ली के साथ विवाह–प्रस्ताव की बात सुनकर महाराज कुंभ के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने आवेशपूर्ण स्वर में गरजते हुए उन दूतों से कहा–''जाकर अपने–अपने राजाओं से कह दो कि

उनमें से किसी के साथ भी मैं अपनी कन्या का विवाह नहीं करूँगा।'' राजप्रासाद से निकल कर छहों दूत अपने-अपने राज्य की ओर लौट पड़े। उन्होंने अपने-अपने राजाओं को मिथिला नरेश का क्रोध और आवेशपूर्ण उत्तर सुनाया कि महाराज कुंभ अपनी राजकुमारी मल्ली का विवाह किसी भी मूल्य और शर्त पर आपसे करने को तैयार नहीं हैं।

दूतों के मुख से महाराज कुंभ का नकारात्मक उत्तर सुनकर जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने दूतों के माध्यम से आपस में संदेश भेजकर निर्णय लिया कि राजा कुंभ ने हमारे दूतों को एक ही साथ अपमानित कर अपने राजमहल से निकलवा दिया और हमारे आग्रह और अनुरोध को ठुकरा कर हमारा अपमान किया है इसलिए हम छहों मिलकर मिथिला पर आक्रमण करें और महाराज कुंभ को पराजित कर अपने अपमान का बदला लें। इस प्रकार निर्णय लेकर छहों राजाओं ने अपनी-अपनी सेना के साथ मिथिला की ओर प्रस्थान किया। जब महाराज कुंभ को मालूम हुआ कि प्रतिबुद्धि आदि छहों राजा मिथिला पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं तो उन्होंने अपनी सेना सजाई और अपने राज्य की सीमा पर उनका सामना करने के लिए उनसे पहले ही पहुँच गए।

थोड़ी ही प्रतीक्षा के बाद छहों राजाओं की विशाल सेना आ पहुँची और आक्रमण कर दिया। छहों राजाओं की सम्मिलित सेना के सामने महाराज कुंभ की सेना अधिक समय तक नहीं टिक सकी, उसके पैर उखड़ गए। राजा कुंभ को छहों राजाओं ने घेर लिया। अपने प्राण संकट में पड़े देख महाराज कुंभ हताश हो गए। उन्होंने तुरंत अपनी सेना को वापस लौटने का आदेश दिया और मिथिला पहुँच कर मिथिला के सभी प्रवेशद्वारों को बंद करवा दिया। इस प्रकार शत्रुओं के आवागमन के सभी रास्ते बंद करवाकर वे नगर की रक्षा व्यवस्था और भविष्य की रणनीति पर विचार करने लगे।

छहों राजाओं को प्रतिबोध

महाराज कुंभ अपनी सेना के साथ मिथिला की ओर लौटे तो छहों राजाओं ने अपनी सेनाओं के साथ उनका पीछा किया और मिथिला पहुँचकर उसे चारों ओर से घेर लिया। मिथिलानरेश को किसी मित्र राजा से सहायता मिलना तो दूर, साधारण जनता का बाहर आना-जाना भी मुश्किल हो गया। मिथिला को इस प्रकार घिरे देखकर महाराज कुंभ किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गए। कई दिनों तक अपने पिता का

दर्शन न पा सकने के कारण मल्लीकुमारी स्वयं महाराज कुंभ के पास पहुँची, पर महाराज इतने चिंतित और ध्यानमग्न थे कि उन्होंने मल्ली की ओर ध्यान ही नहीं दिया। तब मल्ली ने स्वयं महाराज से पूछा – तात्! क्या बात है कि आप आज इतने चिंतित हैं कि आपको मेरे आने का आभास तक नहीं हो पाया। महाराज कुंभ ने कहा–ऐसी बात नहीं है, वस्तुत: मैं तुम्हारे बारे में ही चिंतित हूँ। तुम्हारे साथ विवाह करने का प्रस्ताव लेकर छ: राजाओं ने अपने–अपने दूत मेरे पास भेजे थे। मैंने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया और राजदूतों को अपमानित कर वापस भेज दिया। अब उन सभी ने मिलकर मिथिला पर आक्रमण कर दिया है और मिथिला पर घेरा डाले बैठे हैं। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या किया जाये? पिता की यह बात सुनकर मल्लीकुमारी बोली–''आप उनके पास अलग–अलग अपना दूत भेजकर प्रत्येक राजा से कहिए कि आप उसे अपनी कन्या देने को तैयार हैं और फिर रात के समय उन्हें अलग–अलग बुलाकर अलग–अलग गर्भगृहों में ठहरा दें, फिर मिथिला के सभी प्रवेशद्वार बंद करवा कर सभी राजाओं को यहीं रोककर आत्मरक्षा का प्रबंध करें।'' महाराज कुंभ ने ऐसा ही किया और रात्रि के

समय छहों राजाओं को अलग-अलग बुलवा कर अलग-अलग गर्भगृहों में ठहरा दिया।

सूर्योदय होते ही गर्भगृह के वातायनों से प्रत्येक राजा राजकुमारी मल्ली की उस प्रतिकृति को ही साक्षात् मल्लीकुमारी समझ उसके रूप-लावण्य पर अत्यंत आसक्त हो निर्निमेष देखते रह गये। उसी समय प्रतिमा के पास पहुँचकर राजकुमारी मल्ली ने प्रतिमा के सिर से छिद्र का ढक्कन हटाया तो सारा वातावरण असहनीय दुर्गंध से भर उठा। छहों राजाओं ने अपनी नाक को अपने उत्तरीय से ढंक लिया और दूसरी ओर मुंह मोड़कर बैठ गये।

राजाओं ने उत्तर दिया-राजकुमारी जी, हम इस असह्य दुर्गन्ध को किंचित्मात्र भी सहन नहीं कर पा रहे हैं। इस पर राजकुमारी मल्ली ने कहा-इस कनक प्रतिमा में प्रतिदिन मेरे लिये ही बने अति स्वादिष्ट अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य आहार का मात्र एक-एक ग्रास डाला जाता रहा है। डाले गये उसी आहार के पुद्गल-परिणमन से जब इस प्रकार की दुर्गन्धमय विकृति उत्पन्न हो सकती है तो तरह-तरह की अशुचियों से भरे, सभी प्रकार के रोगों के घर, अस्थि, चर्म

से बने इस शरीर में प्रतिदिन डाले गए पर्याप्त खाद्यान्न का परिणाम कितना दुर्गन्धपूर्ण हो सकता है? अत: हे देवानुप्रियो! इस शाश्वत सत्य को ध्यान में रखते हुए आप लोगों को इन सांसारिक काम-भोगों में नहीं फँसना चाहिए।

याद करो, हम सातों अपने इस जन्म के पूर्व तीसरे जन्म में महाविदेह क्षेत्र की वीतशोका नगरी में समवयस्क सखा, अनन्य मित्र राजपुत्र थे। हमने जीवन में सभी काम साथ-साथ किए, श्रमणदीक्षा भी साथ ही ली और मुनि बनकर निश्चय किया कि सभी तप-साधना साथ-साथ और समान रूप से करेंगे। पर मैंने आप साथी मुनियों से छल किया। मुनि जीवन की प्रारंभिक अवस्था में आप लोगों से छिपाकर अधिक तप करने के कर्म-फलस्वरूप मुझे इस जन्म में स्त्री योनि मिली। आगे चलकर हम सभी ने विशुद्ध भाव से एक समान दुष्कर तप-साधना की। मैंने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करने वाले बीस स्थानों की साधनाएँ उत्कट भावना से कई बार कीं, परिणामस्वरूप तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। हम लोग अपने-अपने तप और साधना में लीन रहे। अन्त में हम सातों मुनियों ने चारू पर्वत पर जाकर संलेखनापूर्वक साथ-साथ पादपोपगमन संथारा किया और

आयु पूर्णकर जयन्त नामक अनुत्तरविमान में अहमिन्द्र हुए। जयन्त विमान की तुम लोगों की आयु कुछ कम थी इसलिए तुम लोग मुझसे पहले ही च्यवन कर इस जन्म में छह जनपदों के अधिपति बने। मैंने अपनी 32 सागर की आयु पूरी कर यहाँ जन्म लिया। आप लोग अपने देव-भव का स्मरण करें, जिसमें हमने प्रतिज्ञा की थी कि हम लोग देवलोक से च्यवन करने के पश्चात् परस्पर एक-दूसरे को प्रतिबोधित करेंगे।

कुमारी मल्ली के मुख से अपने दो पूर्वभवों का विवरण सुनकर छहों राजा विचारमग्न हो गए। उसी विचारमग्नता की स्थिति में उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया। छहों राजा साथ-साथ देवी मल्ली के पास पहुँचे। मल्ली ने कहा-मैं तो सांसारिक जीवन से उद्विग्न हूँ और प्रव्रजित होऊँगी। आप लोग अपनी इच्छानुसार निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं। देवी मल्ली की बात सुनकर उन्होंने कहा कि ऐसी स्थिति में हम भी प्रव्रजित होना चाहेंगे ताकि पहले जन्मों की तरह इस जन्म में भी आपका मार्गदर्शन हम लोगों को मिलता रहे। देवी मल्ली उन राजाओं को अपने पिता महाराज कुंभ के पास ले गईं। राजाओं ने चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज कुंभ ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और वे लोग विदा होकर अपने-अपने राज्यों को चले गए।

मल्लीकुमारी का अभिनिष्क्रमण

मल्लीकुमारी ने दीक्षा लेने का अपना निर्णय अपने पिता महाराज कुंभ को बताया और पिता से अनुमति लेकर वर्षीदान प्रारम्भ कर दिया। महाराज कुंभ ने मिथिला नगरी में स्थान-स्थान पर भोजन शालाएँ खुलवा दीं जहाँ लोगों को स्वादिष्ट भोजन कराया जाता। माँगने वालों को उनकी इच्छानुसार दान दिया जाता। वर्षीदान की समाप्ति पर मल्ली कुमारी ने प्रव्रज्या ग्रहण करने का विचार किया। लोकान्तिक देवों नें मर्यादानुसार संयम ग्रहण करने की प्रार्थना की। महाराज कुंभ ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को आदेश दिया कि तीर्थंकर के निष्क्रमणाभिषेक के लिए आवश्यक सभी प्रकार की अन्यान्य सामग्रियाँ शीघ्र उपस्थित की जाएँ। देवराज इन्द्र ने भी देवों को आदेश दिए कि देवी मल्ली के दीक्षा-समारोह के लिए देवों की ओर से सभी आवश्यक व्यवस्था की जाए। देवताओं द्वारा लाये गए कलश आदि सारी सामग्रियाँ महाराज कुंभ की सामग्रियों के साथ सजा दी गईं। निश्चित समय पर देवराज इन्द्र और महाराज कुंभ ने देवी मल्ली का उन कलशों से अभिषेक किया। अभिषेक के उपरान्त देवी मल्ली को

सिंहासन पर आरूढ़ कर विशेष वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया गया। उसके बाद महाराज कुंभ ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को मनोरमा नाम की शिविका लाने के लिए कहा। देवराज इन्द्र ने भी कई स्तम्भों वाली दिव्य और सुरम्य शिविका मंगवाई। इन्द्र द्वारा मँगाई गई शिविका दैवीप्रभाव से महाराज कुंभ की मनोरमा नामक शिविका से मिल गई। फिर देवी मल्ली उस शिविका पर आरूढ़ हो विशाल शोभायात्रा के रूप में मिथिला नगरी के मुख्य राजमार्गों से हो कर सहस्राम्रवन में अशोक वृक्ष के नीचे आई। अशोक वृक्ष के नीचे देवी मल्ली ने स्वत: अपने हाथों अपने सारे वस्त्र आभूषण उतारे और अपने केशों का पंचमुष्टि लुंचन किया। केशों को इन्द्र ने शुभ्र वस्त्र में रखकर क्षीर-समुद्र में प्रक्षिप्त कर दिया। अष्टमभक्त के तप के साथ अर्हत् मल्ली ने ''णमोत्थुणं सिद्धाणं'' कहते हुए सिद्धों को नमस्कार कर सामायिक चारित्र धारण किया। सामायिक चारित्र को धारण करते ही भगवती मल्ली को मन:पर्यवज्ञान की उपलब्धि हो गयी और वे चार ज्ञान की धारक बन गईं। उस समय पौष मास के शुक्लपक्ष की एकादशी का दिन था। महादेवी मल्ली के साथ उनके आभ्यन्तर परिषद्

की तीन सौ महिलाओं और बाह्य परिषद के तीन सौ पुरुषों ने भी मुंडित होकर दीक्षा ग्रहण की। साथ ही नंद, नंदिमित्र, सुमित्र, बलमित्र, भानुमित्र, अमरपति, अमरसेन और महासेन नामक आठ राजकुमारों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। चार प्रकार के देवों ने भगवती मल्ली के अभिनिष्क्रमण की खूब महिमा गाई और नंदीश्वर नामक द्वीप में अष्टाह्निक महोत्सव मनाया फिर अपने स्थान को चले गए।

केवलज्ञान

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् उसी दिन भगवती मल्ली अशोक वृक्ष के नीचे पद्मासन में ध्यानावस्थित हो गईं। उन्होंने शुभपरिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध लेश्याओं के द्वारा घनघातिक कर्मों के सम्पूर्ण आवरणों को क्षय करने वाले अपूर्वकरण में प्रवेश किया और बहुत थोड़े ही समय में 12 गुणस्थान को पारकर दिन के पश्चिम प्रहर में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया। उस दिन पौषशुक्ला एकादशी की तिथि थी। इस प्रकार भगवती मल्ली का छद्मस्थकाल एक प्रहर से थोड़ा अधिक अथवा डेढ़ प्रहर का रहा। इतने कम समय में केवलज्ञान और केवलदर्शन भगवान मल्लीनाथ के पहले और बाद में किसी को उपलब्ध नहीं हुआ था। यह भगवान मल्लीनाथ की विशिष्टता रही।

भगवान मल्लीनाथ का प्रथम पारणा भी केवलज्ञान में ही मिथिला के महाराज कुंभ के अधीनस्थ राजा विश्वसेन के यहाँ सम्पन्न हुआ।

भगवान मल्लीनाथ को केवलज्ञान प्राप्त होने का आभास पाते ही देव-देवेन्द्रों ने केवलज्ञान महोत्सव मनाते हुए पंच-दिव्यों की वृष्टि की और उसी आम्रवन में समवसरण की रचना की। भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति का शुभ समाचार तत्काल ही सर्वत्र प्रसारित हो गया। विशाल जनसमूह के साथ स्वयं महाराज कुंभ, महारानी प्रभावती, समस्त परिजनों और पुरजनों के साथ समवसरण में उपस्थित हुए। प्रतिबुद्धि आदि छहों राजा भी अपना-अपना राज्यभार अपने-अपने युवराजों को सौंप कर विशाल पालकियों में बैठकर दीक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से समवसरण में उपस्थित हुए। इस प्रकार देवी-देवताओं और नर-नारियों के विशाल समवसरण में देवकृत उच्च सिंहासन पर आसीन हो भगवान् मल्ली ने अपनी पहली अमोघ दिव्य देशना में संसार के सब प्रकार के दु:खों का अन्त कर जगज्जीवों का कल्याण करने वाले धर्म का सच्चा स्वरूप लोगों को समझाया। उपस्थित श्रोतागण के लिए समवसरण का यह एक अलौकिक अनुभव

था। देशना की समाप्ति पर भगवान् मल्लिनाथ ने चतुर्विध धर्मसंघ की स्थापना की। स्वयं महाराज कुंभ ने श्रावकधर्म और महारानी प्रभावती ने श्राविकाधर्म स्वीकार किया। जितशत्रु आदि छहों राजाओं ने श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की। आगे चलकर वे चतुर्दशपूर्वधर और तदनन्तर केवली होकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। इस प्रकार चतुर्विध धर्मतीर्थ की स्थापना कर भगवान मल्ली तीर्थंकर कहलाए।

तीर्थंकर मल्लिनाथ के प्रथम शिष्य एवं प्रमुख गणधर का नाम भिषक और साध्वीसंघ की प्रवर्तिनी का नाम बन्धुमती था, जो भगवान की प्रथम शिष्या भी थी। भ. मल्लिनाथ के पहले और बाद के सभी तेईस तीर्थंकरों की एक ही प्रकार की परिषद् थी। किन्तु मल्लिनाथ की साध्वियों की आभ्यन्तर परिषद् और साधुओं की बाह्य परिषद् नामक दो परिषदें थीं। भ. मल्लिनाथ ने 54900 वर्षों तक अनेक क्षेत्रों में विचरण करते हुए असंख्य भव्यात्माओं का कल्याण किया। अन्त में भगवान सम्मेत-शिखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने 1000 साधु-साध्वियों के संग पादपोपगमन निर्जल संथारा ग्रहण किया। शांत-निश्चल भाव से प्रभु ने शेष चार अघातिकर्मों का नाश किया और अपनी 55 हजार वर्ष की

आयु पूर्णकर चैत्र शुक्ला चौथ की अर्धरात्रि को एक महीने का अनशन पूर्णकर 1000 साधु-साध्वियों के साथ निर्वाण प्राप्त किया।

सुभूम चक्रवर्ती-प्रतिशोध का कुफल

भरतक्षेत्र के आठवें चक्रवर्ती सुभूम जैन धर्म के अठारहवें तीर्थंकर एवं सातवें चक्रवर्ती भगवान अरनाथ और उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ के अन्तरकाल में हुए। सुभूम हस्तिनापुर के प्रसिद्ध महाशक्तिशाली राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के पुत्र थे। उनकी माता का नाम तारा था। आचार्य शीलांक के ''चउवन्न महापुरुष चरियं'' में सम्राट सुभूम का परिचय प्राप्त होता है।

जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में हस्तिनापुर नामक एक नगर था। उस नगर के पास विशाल वन में तपस्वियों का एक आश्रम था। उस आश्रम के प्रमुख तपस्वी का नाम जम या यम था। एक दिन एक अनाथ ब्राह्मण बालक अपने साथियों से बिछुड़कर इधर-उधर घूमता हुआ उस आश्रम में पहुँचा। तपस्वी जम ने उस बालक को अपने पास रख लिया। कुछ समय के बाद वह बालक सन्यासी बन गया, जिसे 'अग्नि'

नाम दिया गया। आगे चलकर बालक के नाम के साथ गुरु का नाम भी उच्चारण करते रहने से उसका नाम 'जमदग्नि' प्रसिद्ध हो गया। घोर तपस्या करने के कारण जमदग्नि की गणना महान् तपस्वियों में होने लगी।

एक बार रात के समय जब महर्षि जमदग्नि अपने आश्रम में एक पेड़ के नीचे घोर तपस्या में लीन थे, दो देव उस तपस्वी मुनि की परीक्षा लेने का निश्चय कर चकोर एवं चकोरी का रूप बना उसी पेड़ पर बैठ गये। चकोरी ने चकोर से पूछा – इस पेड़ के नीचे एक पैर पर खड़ा जो तपस्वी तपस्या कर रहा है, क्या वह अपनी तपस्या के प्रभाव से अगले जन्म में स्वर्ग के सुखों का अधिकारी होगा? चकोर ने उत्तर दिया – नहीं। इस पर चकोरी ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा – आखिर क्यों? इतना बड़ा तपस्वी अगर स्वर्ग के सुखों का अधिकारी नहीं होगा तो और कौन स्वर्ग के सुखों को पा सकता है? इस पर चकोर ने कहा–'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' इस वचन के अनुसार जिसके पुत्र नहीं होता वह मोक्ष नहीं पा सकता, चाहे वह कितना भी बड़ा तपस्वी क्यों न हो। इस तपस्वी के कोई पुत्र नहीं है।

उपरोक्त वार्तालाप सुनकर जमदग्नि विचारमग्न हो गए। उन्होंने सोचा – दोनों पक्षी ठीक ही कह रहे हैं। बिना पुत्र के तपस्या द्वारा मुक्तिप्राप्ति की आशा करना मृगमरीचिका का पीछा करना है। अत: मैं तपस्या को छोड़कर पहले किसी कुलीन सुन्दरी से विवाह कर पुत्र प्राप्त करने का प्रयास करूँगा। मन में यह विचार आते ही दूसरे दिन ऋषि जमदग्नि मिथिला की ओर चल पड़े। मिथिला पहुँच कर उन्होंने राजा से कहा – मैं विवाह करना चाहता हूँ, अपनी 100 कन्याओं में से कोई एक राजकन्या मुझे दे दो। आज्ञा न मानने पर तपस्वी कोई अनिष्ट न कर दें, ऐसा सोचकर राजा तपस्वी से बोले – भगवन्! आप अपनी इच्छानुसार मेरी किसी भी राजकन्या को चुन सकते हैं। जमदग्नि ने महाराज की रेणुका नामक कन्या को चुना और विवाह के पश्चात् रेणुका के साथ अपने तपोवन को लौट आए।

रेणुका की एक बहन का नाम तारा था। तारा का विवाह हस्तिनापुर के कौरववंशी राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन के साथ हुआ था। कालान्तर में रेणुका ने एक पुत्र को जन्म दिया। जमदग्नि ने अपने उस पुत्र को अपना परशु दिया और उसका नाम परशुराम रखा। एक बार रेणुका अपनी बहन

तारा के यहाँ गई। हस्तिनापुर के राजप्रासाद में तारा ने अपनी बहन का राजसी ठाट-बाट के साथ आतिथ्यसत्कार किया। राजप्रासाद के सुखभोगों से आकर्षित होकर रेणुका कार्तवीर्य पर आसक्त हो गई और उसके साथ काम-भोगों में अनुरक्त रहने लगी। जमदग्नि को जब इसका पता चला तो वे रेणुका को अपने आश्रम में वापस ले आए। उन्होंने अपने पुत्र परशुराम को रेणुका की दुश्चरित्रता की बात बताई तो पुत्र परशुराम ने परशु से अपनी माता का सिर काट दिया। रेणुका की हत्या का समाचार सुनकर कार्तवीर्य जमदग्नि के आश्रम में पहुँचा। वहाँ रेणुका का सिर काटने वाले परशुराम नहीं मिले तो उसने तपस्वी जमदग्नि की ही हत्या कर दी। कार्तवीर्य द्वारा अपने पिता को मार दिये जाने का समाचार सुनकर परशुराम के क्रोध की सीमा न रही। उसने हस्तिनापुर जाकर कार्तवीर्य को मार डाला और क्षत्रियों का नाश करने का संकल्प ले लिया। परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करने के लिए घूम-घूम कर सात बार क्षत्रियों का सामूहिक संहार किया।

कार्तवीर्य के वध के समय उसकी रानी तारा गर्भवती थी। उसने अपनी जान बचाने के लिए वेश बदलकर हस्तिनापुर का राजप्रासाद छोड़ दिया और एक तपस्वी के

आश्रम में पहुँची। वहाँ वह एक भूगृह में रहने लगी। समय आने पर वहीं उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसके मुँह में जन्म से ही दाढ़ें और दाँत थे। माँ के गर्भ से निकलते ही यह बालक भूमितल को अपनी दाढ़ों से पकड़ कर खड़ा हो गया। अत: माँ ने उसका नाम सुभूम रखा। भूगृह में ही बालक का लालन-पालन हुआ और वहीं वह बड़ा हुआ। आश्रम के तपस्वी-आचार्य ने सुभूम को सभी प्रकार के शास्त्र और विद्याओं की शिक्षा दी। बड़े होने पर सुभूम ने अपनी माँ तारा से पूछा कि मेरे पिता कौन हैं और मुझे इस भूगृह में क्यों रखा जा रहा है? सुभूम के बार-बार आग्रह करने पर तारा ने सारा वृत्तान्त उसे सुनाया। अपने पिता को मारने वाले का नाम सुनकर सुभूम की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने पूछा-माँ! बताओ मेरा वह पितृघाती अधम कहाँ रहता है? माँ तारा ने कहा - वह नृशंस पास ही के नगर में रहता है। अपने द्वारा मारे गए क्षत्रियों की संख्या की जानकारी रखने के लिए उसने मारे गए क्षत्रियों की एक-एक दाढ़ उखाड़ कर सब दाढ़ें एक बड़े थाल में इकट्ठा कर रखी हैं। किसी ज्योतिषी ने उससे कहा है कि आगे चलकर कोई ऐसा व्यक्ति आएगा, जिसके सिंहासन पर बैठते ही यह दाढ़ों भरा थाल खीर भरा थाल बन

जाएगा। वह व्यक्ति उस खीर को पी जायेगा फिर तुम्हारा प्राणांत करेगा।

ज्योतिषी की बात सुनकर परशुराम ने एक शस्त्रागार बनवाया। शस्त्रागार के एक मण्डप में उसने एक ऊँचा सिंहासन रखवाया, जिसके पास ही उसने वह दाढ़ों भरा थाल रख दिया। परशुराम ने उस शस्त्रागार की रक्षा के लिए बहुत बड़ी संख्या में सैनिक नियुक्त कर रखे थे। अपनी माँ के मुँह से परशुराम का वृत्तान्त सुनकर सुभूम तुरन्त उस स्थान के लिए चल पड़ा। शस्त्रागार के सैनिकों का संहार कर वह सिंहासन पर जा बैठा। सिंहासन पर बैठकर ज्यों ही उसने दाढ़ों भरी थाल पर निगाह डाली, वह थाल अदृष्ट शक्ति के प्रभाव से खीर के थाल में परिवर्तित हो गया। सुभूम उस खीर को खाने लगा। शस्त्रागार के घायल सैनिकों ने परशुराम की सेवा में उपस्थित हो इस घटना की सूचना दी।

सैनिकों के मुख से पूरा वृत्तांत सुनकर परशुराम को ज्योतिषी की बातें याद आईं। वे तुरंत शस्त्रागार में पहुँचे। उन्होंने देखा बालक सचमुच उस सिंहासन पर बैठा निर्भीक और निश्शंक भाव से खीर खा रहा है। उन्होंने कड़क कर सुभूम से कहा – अरे ओ ब्राह्मण के बच्चे, तू कौन है और

किसके कहने से इस सिंहासन पर बैठा है? क्या तू नहीं जानता कि थाल में मेरे द्वारा मारे गए क्षत्रियों की दाढ़ें रखी हुई हैं, जिन्हें तू बड़े चाव से खा रहा है। अगर तुझे भूख ही लगी है तो मेरे इस शस्त्रागार में उत्तम भोजन की व्यवस्था है, जिसे खाकर अपना पेट भर सकता है। सुभूम सहज निर्भीक भाव से परशुराम की बातें भी सुनता रहा और खीर भी खाता रहा। परशुराम की बातें खत्म होने पर बोला – मैं किसी के कहने से नहीं बल्कि अपने पराक्रम के बल पर इस सिंहासन पर बैठा हूँ। मैं जानता हूँ कि इस थाल में मनुष्यों की दाढ़ें रखी थीं, पर मैं अदृष्ट शक्ति से परिवर्तित खीर खा रहा हूँ और मैं देखने में तापस ब्राह्मण–सा लगता जरूर हूँ पर मैं वास्तव में ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं क्षत्रिय कुमार हूँ और तुम्हारा वध करने के लिए आया हूँ। पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए मेरी भुजाएँ फड़क रही हैं। अत: बातें बनाना छोड़कर शस्त्र लो और अपना पराक्रम दिखाओ। मैं कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का पुत्र हूँ। तुमने सात बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित किया है और मैं 21 बार पृथ्वी को ब्राह्मणरहित करूँगा, तभी मेरी क्रोधाग्नि शांत होगी।

सुभूम की यह ललकार सुनकर परशुराम का रोम–

रोम फड़कने लगा। उन्होंने तत्काल अपने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर सुभूम पर बाणों की झड़ी लगा दी पर सुभूम ने थाल की ढाल से सभी बाणों को निरर्थक कर दिया। यह देख परशुराम चकित और हतप्रभ हो गया। धनुष–बाण को एक ओर रख उन्होंने अपना परशु सँभाला पर परशु को भी निष्प्रभ होता देख उन्हें बड़ी निराशा हुई। कुछ क्षणों तक विचारमग्न रहने के बाद उन्होंने सुभूम का मस्तक काटने की अभिलाषा से उसकी गरदन की ओर अपना परशु फेंका पर वह परशु सुभूम के पैरों के पास जा गिरा। सुभूम ने अट्टहास किया और परशुराम को मारने के लिए थाल उठाया। सुभूम के हाथों में आते ही वह थाल सहस्रार चक्र के समान चमक उठा। सुभूम ने परशुराम की गरदन को लक्ष्य कर थाल फेंका जिससे परशुराम का मुण्ड ताड़फल की तरह कट कर पृथ्वी पर लुढ़क पड़ा। परशुराम का सिर काटकर भी सुभूम का क्रोध शांत नहीं हुआ। उसने भीषण संहार कर 21 बार पृथ्वी को ब्राह्मण विहीन बनाया।

कालान्तर में सुभूम ने संपूर्ण भरतक्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिलाकर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। नौ निधियों

और 14 रत्नों का स्वामी बनकर सुभूम सुदीर्घ काल तक विशाल साम्राज्य का शासक रहा, समस्त सुखों का उपभोग कर अन्त में अपनी आयु समाप्त होने पर मृत्यु को प्राप्त हुआ और घोर नरक का अधिकारी बना।

विष्णुकुमार–संघ रक्षार्थ लब्धि–प्रयोग

प्राचीन काल में भरत क्षेत्र के आर्यावर्त खण्ड में हस्तिनापुर बहुत ही प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगर था। उसी हस्तिनापुर में नौवें चक्रवर्ती सम्राट महापद्म हुए। वहाँ भगवान ऋषभदेव की वंशपरम्परा के पद्मोत्तर नामक एक महाप्रतापी राजा राज्य करता था। उनकी महारानी का नाम ज्वाला था। महारानी ज्वाला ने एक रात स्वप्न में देखा कि एक केसरी सिंह उनके मुँह में प्रविष्ट हो गया है। रानी ने अपने स्वप्न की बात महाराज को बताई। स्वप्नपाठकों ने गणना करके बताया कि महारानी की कोंख में एक महान् पुण्यशाली प्राणी आया है जो आगे चलकर अक्षय कीर्ति का अर्जन करेगा। गर्भकाल पूरा होने पर महारानी ने एक अतिसुन्दर और महान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम विष्णुकुमार रखा गया।

आगे चलकर महारानी ज्वाला ने एक रात चौदह

महास्वप्न देखे। स्वप्नपाठकों ने महाराज और महारानी की जिज्ञासा शांत करते हुए बताया कि महारानी की कोख से जो पुत्र पैदा होगा वह बड़ा होकर सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। गर्भकाल समाप्त होने पर महारानी ने एक शुभ लक्षण सम्पन्न महान् तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम महापद्म रखा गया। विष्णुकुमार और महापद्म दोनों भाइयों का राजसी ठाठ-बाठ के साथ पालन-पोषण किया गया और राजकुमारों के लिए आवश्यक समुचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया गया। दोनों भाई तीक्ष्ण-बुद्धि सम्पन्न थे और शीघ्र ही सभी प्रकार की विद्याओं में पारंगत हो गए और बाल्यकाल से युवावस्था को प्राप्त हुए। विष्णुकुमार बचपन से ही सांसारिक क्रियाकलापों और सुखोपभोगों के प्रति उदासीन थे, अत: शीघ्र ही उन्होंने माता-पिता की आज्ञा और अनुमति लेकर श्रमणधर्म स्वीकार कर लिया, अंगशास्त्रों का अध्ययन किया और कठोर तपश्चरण करने लगे। परिणामस्वरूप उन्होंने अनेक लब्धियाँ और विद्याएँ सहज ही प्राप्त कर ली। उधर महापद्म में एक सुयोग्य शासक और सम्राट के सारे लक्षणों एवं गुणों का विकास होने लगा अत:

महाराज पद्मोत्तर ने उन्हें युवराज बनाकर शासन संचालन का भार सौंप दिया।

उन्हीं दिनों बीसवें तीर्थंकर भगवान मुनिसुव्रत के शिष्य आचार्य सुव्रत विहार करते हुए उज्जयिनी पधारे। आचार्यश्री के आगमन का समाचार सुन उज्जयिनी नरेश श्रीवर्मा अपने प्रधान अमात्य नमुचि और अन्य गणमान्य लोगों के साथ उनके दर्शन करने पहुँचे। नमुचि को अपने पाण्डित्य पर बड़ा गर्व था। वहाँ बैठकर वह वैदिक कर्मकाण्ड की प्रशंसा करते हुए श्रमणधर्म की निन्दा करने लगा। नमुचि के इस कार्य पर आचार्य सुव्रत तो मौन रहे पर उनके एक अल्पवयस्क शिष्य ने उसके साथ शास्त्रार्थ कर लोगों के सम्मुख ही उसे परास्त कर दिया। नमुचि को बड़ी ग्लानि हुई और उसने मन ही मन इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया।

प्रतिशोध की भावना के वशीभूत उन्मत्त बना नमुचि रात्रि के अंधकार में एक नंगी तलवार लिए उस उद्यान में आया और सबको गहरी निद्रा में देख निर्विघ्न अल्पवयस्क मुनि के पास पहुँच गया। मुनि को मारने के लिए उसने दोनों

हाथों से तलवार की मूठ को कसकर पकड़ा और दोनों हाथों को ऊपर उठाया। वह पूरी ताकत से हाथों को नीचे लाना ही चाहता था कि वह उसी स्थिति में जड़वत हो गया, उसके हाथ ऊपर के ऊपर ही रह गए, उसके लिए अपने पैर उठाना भी असंभव हो गया। अपनी इस स्थिति से दूसरे दिन प्रात:काल होने वाली दुर्गति, अपकीर्ति और कलंक-कालिमा के विचारमात्र से उसका मुख विवर्ण हो गया। दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्त में ही सबसे पहले मुनियों ने नमुचि को इस स्थिति में देखा, फिर मुनियों के दर्शनार्थ आए श्रद्धालु नागरिकों ने देखा और बात फैलते ही सारा नगर नमुचि को इस स्थिति में देखने के लिए उमड़ पड़ा। लोग नमुचि की टीका-टिप्पणी करने लगे। ज्योंही स्तंभन का प्रभाव समाप्त हुआ, वह ग्लानि से अपना मुँह छिपाए अपने घर आ गया। उज्जयिनी में रहना उसके लिए असंभव था इसलिए चुपचाप उज्जयिनी से निकलकर घूमता-घूमता हस्तिनापुर आ गया।

हस्तिनापुर पहुँच कर नमुचि युवराज महापद्म के सम्पर्क में आया और धीरे-धीरे उनका विश्वासपात्र बन गया। महापद्म ने उसे मंत्री का पद भी दे दिया। उन्हीं दिनों हस्तिनापुर

के अधीन रहने वाले सिंहरथ नामक एक राजा ने विद्रोह खड़ा कर दिया। आस-पास लूटमार कर अपने दुर्ग में चला जाता। युवराज ने सिंहरथ को पकड़ने के लिए अपनी सेना भेजी पर कोई सफलता नहीं मिली। अन्त में महापद्म ने नमुचि को आदेश दिया कि वह सिंहरथ को बंदी बना लाए। नमुचि ने विशाल सेना के सहारे सिंहरथ के दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया और आवागमन के सारे मार्ग अवरूद्ध कर दिए। नमुचि ने एक और चाल चली और सिंहरथ के कुछ दुर्गरक्षकों को प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया और एक दिन गुप्त मार्ग से सिंहरथ के दुर्ग में सेना के साथ प्रवेश कर सिंहरथ को बंदी बना लिया।

नमुचि के इस सफल अभियान से महापद्म बहुत प्रभावित हुए और उससे अपनी इच्छानुसार कुछ माँगने को कहा। नमुचि ने महापद्म को इस अनुग्रह के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि महाराज आप इस वचन को अपने पास मेरी धरोहर की तरह रखिए, मैं उचित अवसर और आवश्यकता पड़ने पर आपसे माँग लूँगा। युवराज महापद्म ने नमुचि की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। कालान्तर में महापद्म

की आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न प्रकट हुआ और उन्होंने षट्खण्ड पर विजय प्राप्त की तथा नवनिधियों एवं चौदहरत्नों के स्वामी बने और चक्रवर्ती सम्राट पद से अलंकृत हुए। जब वे भरतखण्ड के चक्रवर्ती सम्राट के रूप में हस्तिनापुर के सिंहासन पर आरूढ़ थे तब एक बार आचार्य सुव्रत अपने शिष्य समूह के साथ हस्तिनापुर पहुँचे और वहाँ की श्रद्धालु जनता की प्रार्थना पर चातुर्मास के लिए नगर के बाहर एक उद्यान में रहना स्वीकार किया। नमुचि ने अपने अपमान का बदला लेने का उचित अवसर देख महापद्म को अपने वचन की याद दिलाई और कहा कि मैं अपने परलोक सिद्धि के लिए एक महान् यज्ञ करना चाहता हूँ जिसकी सुचारू रूप से सम्पन्नता के लिए आप मुझे यज्ञ की पूर्णाहुति तक अपने साम्राज्य का स्वामी बनायें और मेरी आज्ञा उस काल में सबके लिए शिरोधार्य और अनुल्लंघनीय रहे। सम्राट महापद्म ने नमुचि की बात मान ली।

छोटे-बड़े सभी अधिकारी, गणमान्य नागरिक, धर्माध्यक्ष आदि ने नमुचि के पास जाकर उसे साधुवाद दिया और यज्ञ की पूर्णाहुति के लिए शुभकामनाएँ दीं। सांसारिक

प्रपंच-व्यवहारों से दूर रहना - श्रमणधर्म और श्रमणाचार की इस मर्यादा को ध्यान में रखते हुए आचार्य सुव्रत नमुचि के पास नहीं गए। इससे वह बड़ा नाराज हुआ। सुव्रताचार्य और श्रमणवर्ग के प्रति अपना वैमनस्य दिखाने के लिए ही तो उसने सारा प्रपंच रचा था। वह क्रोध से तिलमिलाता हुआ आचार्य सुव्रत के यहाँ गया और बोला - तुम सभी साधु-श्रमण सात दिन के अन्दर मेरे राज्य की सीमा से बाहर चले जाओ। इसके बाद कोई भी श्रमण राज्य में दिखाई दिया तो मृत्युदण्ड का भागी होगा। श्रमणसंघ को इस घोर संकट से बचाने के लिए आचार्य सुव्रत ने अपने शिष्य और महान् लब्धिधारी मुनि विष्णुकुमार को बुलाया। उन्होंने नमुचि को समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु नमुचि अपनी जिद्द पर डटा रहा। अन्त में उन्होंने नमुचि से कहा - कोई बात नहीं, कम से कम तीन चरण भूमि मुझे दे दो। नमुचि तैयार हो गया और बोला - ठीक है, उस तीन चरण भूमि से बाहर जो भी श्रमण-साधु रहेगा, उसे मार दिया जायेगा। फिर क्या था, विष्णुकुमार मुनि ने वैक्रिय लब्धि के सहारे अपना शरीर बढ़ाना शुरु किया। देखते ही देखते अनन्त आकाश उनके शरीर से आपूरित हो गया। मुनि विष्णुकुमार

का यह रूप देखकर नमुचि भयाक्रांत हो भूमि पर गिर पड़ा। मुनि विष्णुकुमार ने अपना एक चरण समुद्र के पूर्वी तट पर रखा और दूसरा चरण सागर के पश्चिमी तट पर। फिर प्रलयघन की तरह गरज कर बोले – अब बोल नमूचे! मैं अपना तीसरा चरण कहाँ रखूँ। नमुचि के मुँह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे, वह पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था। चक्रवर्ती महापद्म अन्त:पुर से बाहर आए, घटनास्थल पर पहुँचकर उन्होंने विष्णुकुमार को पहचान, उन्हें नमन किया और उपेक्षाजन्य अपराध के लिए क्षमाप्रार्थना की। मुनि विष्णुकुमार शांत हुए। उन्होंने अपना विराट रूप संकुचित किया। नमुचि की ओर क्षमा–दृष्टि डाली, श्रमणसंघ की रक्षा के लिए किए गए अपने इस लब्धि–प्रयोग का प्रायश्चित किया और पुन: अपनी साधना में लीन हो गए। तप–संयम की साधना से उन्होंने अपने आठों कर्मों को मूलत: नष्ट किया और शाश्वत सुखधाम मोक्ष को प्राप्त किया। चक्रवर्ती महापद्म ने भी 20 हजार वर्ष की आयु में श्रमणधर्म की दीक्षा ली और दस हजार वर्ष तक विशुद्ध संयम का पालन कर तपश्चरण द्वारा आठों कर्मों का अन्तकर मोक्ष प्राप्त किया।

इतिहास पुरुष आचार्य हस्ती

युग मनीषी आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज भारतीय निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा के उज्ज्वल नक्षत्र थे। वि. सं. 1967 की पौष शुक्ला चतुर्दशी (13 जनवरी 1911) को राजस्थान के जोधपुर जिलान्तर्गत पीपाड़ सिटी में उनका जन्म हुआ। उनके जन्म के दो माह पूर्व ही उनके पिता श्री केवलचन्द बोहरा प्लेग की चपेट में आकर परलोक सिधार गये। उनकी माँ श्राविका रूपकँवर (रूपादेवी) पर यह अनभ्र वज्रपात था। इस घटना से रूपादेवी को संसार से विरक्ति हो गई। वैराग्यभाव के साथ ही उसने बालक हस्तीमल का पालन-पोषण किया और गहरे धर्मसंस्कार प्रदान किये। इस बीच कुछ ही वर्षों के अन्तराल में हस्ती के नाना तथा दादी का भी देहान्त हो गया। जन्मजात वैरागी बालक हस्ती के चित्त पर इन घटनाओं का गहरा असर हुआ और उनका वैराग्य दृढ़ से दृढ़तर बनता गया।

माघ शुक्ला द्वितीया वि.सं. 1977 (10 फरवरी 1921) को अजमेर (राज.) में महज 10 की बालवय में आचार्य श्री शोभाचन्द्रजी महाराज से वैरागी हस्तीमल ने मुनि जीवन अंगीकार कर लिया। उनके साथ ही उनकी वीरमाता रूपादेवी तथा अन्य दो मुमुक्षुओं ने भी दीक्षा लेकर संयम की राह अपना ली। दीक्षा के उपरान्त ही उन्होंने जैनागम, प्राच्य भाषा, दर्शन और साहित्य का अध्ययन शुरू कर दिया। बचपन से ही विशिष्ट

योग्यता और प्रतिभा के धनी बालयोगी मुनि हस्तीमल का मात्र साढ़े पन्द्रह वर्ष की वय में ही संघ नायक के रूप में चयन कर लिया गया। थोड़े ही समय में उनका ज्ञान-ध्यान इतना अनुत्तर बन गया कि मात्र 19 वर्ष 3 माह और 19 दिन की तरुण वय में वि. सं. 1987 की वैशाख शुक्ला 3 अक्षय तृतीया को जोधपुर में उन्हें स्थानकवासी परम्परा के रत्नसंघ के सप्तम आचार्य के रूप में अभिषिक्त कर दिया गया। जैन इतिहास में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के बाद संभवत: यह पहला अवसर था जब 20 वर्ष से कम उम्र के किसी मुनि को आचार्य पद पर आरूढ़ किया गया।

आचार्य हस्ती का व्यक्तित्व अखूट आध्यात्मिक ऊर्जा से भरा और कृतित्व बहुआयामी था। सामायिक साधना के द्वारा समभाव-प्राप्ति का सन्देश देने के साथ उन्होंने लाखों लोगों को स्वाध्याय से जोड़कर समाज में मैत्री और ज्ञान का नव आलोक प्रसारित कर दिया। व्यसनमुक्ति, कुरीति-उन्मूलन, नारी-शिक्षा जैसे अनेक कदम उन्हें महान समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। करुणा के सागर आचार्य हस्ती ने साँप जैसे विषैले प्राणी को भी अभय प्रदान किया। अहिंसा, क्षमा और समता को उन्होंने व्यवहार स्तर पर जिया और दुनिया को यह सन्देश दिया कि भगवान महावीर के अहिंसा आदि जीवन मूल्य सभी मौजूदा समस्याओं का समाधान करने में पूर्ण सक्षम है।

प्राचीन भाषा व लिपि के विशेषज्ञ आचार्य हस्ती का जीवन उनके जीवनकाल में ही इतिहास बन गया था। अथक श्रम और प्रचुर प्रामाणिक सन्दर्भो के साथ लगभग साढ़े तीन हजार पृष्ठों में लिखित और चार भागों विभक्त 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' जैन धर्म और भारतीय समाज के लिए उनका अमर अवदान है। इसके अतिरिक्त कई जैन आगम ग्रंथों का उन्होंने सम्पादन, अनुवाद और पद्यानुवाद किया। धर्म, संस्कृति और अध्यात्म की गहरी अनुभूतियों से अनुप्राणित काव्य उन्होंने रचे। वे एक कुशल और प्रभावी प्रवचनकार थे। उनके प्रेरक प्रवचनों का संकलन 'गजेन्द्र व्याख्यानमाला' शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित हुआ।

राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए आचार्य हस्ती ने कुल 70 चातुर्मास किये और 85 मुमुक्षुओं को श्रमण जीवन में दीक्षित किया। वि. सं. 2048 की वैशाख (प्रथम) शुक्ला अष्टमी (21 अप्रेल 1991) को रात्रि 8 बजकर 21 मिनट पर 13 दिवसीय तप-संथारे के साथ आचार्य हस्ती इस नश्वर देह को छोड़कर देवलोकगमन कर गये। जन्म और जीवन की तरह उनका महाप्रयाण भी एक इतिहास बन गया। सम्प्रति उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य श्री हीराचन्द्रजी महाराज रत्नसंघ के अष्टम पट्टधर हैं।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
के विविध सेवा सोपान

- जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन
- जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन
- आचार्य श्री हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान
- अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद का संचालन
- वीतराग ध्यान साधना केन्द्र का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के
रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र
मंत्री
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183, के ऊपर, बापू बाजार
जयपुर-302003 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-2575997 फैक्स : 0141-2570753
ई-मेल - sgpmandal@yahoo.in